चतुर्थ अध्याय

सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण में वर्णित साधना का स्वरूप

'साधना' का अर्थ है प्रयत्न करना, उद्योग करना, लगना। साधना का अर्थ सिद्धि भी है। आत्मानुसन्धान के मार्ग में, अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन कर 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' की अनुभूति के पथ में हमारी जो कुछ भी आध्यात्मिक चेष्टाएँ होती हैं उन सबका नाम 'साधना' है।

नदी की धारा ऊँचे चढ़ती है, नीचे ढलती है, वन–पर्वत को लाँघती हुई बढ़ती जाती है। क्यों? किसलिए? इसलिए कि वह अन्त में अपने आप को समुद्र की गोद में सुला दे, लीन कर दे, मिटा दे। मनुष्य की आत्मा भी भाग्य के उतार–चढ़ाव, सुख–दुःख, हर्ष–विषाद और ऐसे ही जीवन के विविध खट्टे–मीठे अनन्त अनुभवों को पार करती हुई सत्, चित् और आनन्द के एक अनन्त महासागर में अपने आपको ढाल देने के लिए व्याकुल है, बेचैन है। नदी का लक्ष्य है समुद्र, मनुष्य का लक्ष्य है भगवान्। भगवान के मार्ग में चलने के लिए जो भी अनुष्ठान किया जाता है, जो भी व्रत लिया जाता है, वह सभी 'साधना' है।

इसी साधना के साधक कवि रूद्र प्रताप सिंह भी है। कवि वैष्णव धर्म के अनुयायी हैं। वैष्णव मत की स्थापना 'रामखण्ड रामायण' में करना कवि का उद्देश्य और लक्ष्य है। कवि के राम वैष्णव धर्म के पूज्य स्वामी हैं इसलिए उन्हें धर्म–प्रतिपादन में अत्यधिक सुविधा सुलभ हो जाती है। कवि की धर्माचरणरूपी यह धार्मिक साधना ही अध्यात्म–मन्दिर पर चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी है। इसलिए यही सबसे पहली साधना है।

'रामखण्ड रामायण' में कवि के अनुसार जीव का धर्म है साधना, और भगवान् का धर्म है कृपा। जीव जब अपने धर्म का पालन करता है, तभी वह भगवद्धर्म का अनुभव कर सकता है। जो स्वधर्म का पालन नहीं करता, वह दूसरे से धर्मपालन की आशा रखे यह उपहासास्पद बात है। कवि के इष्ट (राम) अवतारी हैं। उन्होंने भक्तों के हित के लिए नर तन धारण किया। इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् (राम) की कृपा चर–अचर, व्यक्त–अव्यक्त और जड़–जीव सब पर एक रस एवं अहेतुक है, उसके लिए देश, काल अथवा वस्तु का भेद नहीं है, वह अनादि काल से अनन्त काल तक एकरस बरसती रहती है, बरसना ही उसका स्वभाव है और इस प्रकार बरसती रहती है कि जो कुछ है, वह सब उस कृपा का एक कणमात्र है, परन्तु इस सत्य का साक्षात्कार साधना के बिना नहीं होता। राम की कृपा के अभाव में अज्ञान रूपी अंधकार का नाश नहीं होता।

अतः हमें साधना के द्वारा अपने अन्तःकरण में ऐसी पात्रता और क्षमता को उद्दीप्त करना पड़ेगा, जिसके द्वारा हम उस एकरस कृपा का अनुभव करने में समर्थ हो सकें। सूर्य का प्रकाश तो कोयले और आतशी शीशे पर समान रूप से ही पड़ता है, परन्तु कोयले पर उसका बहुत ही कम प्रभाव पड़ता है और आतशी शीशे के संयोग से वह प्रज्वलित हो उठता है। यही बात भगवत्कृपा के सम्बन्ध में भी है। उसकी अनुभूति के लिए साधना के संघर्ष से चमकते हुए निर्मल ओर उज्ज्वल अन्तःकरण की आवश्यकता है।

(क) गुरु–निष्ठा

श्री गुरुदेव शब्द के उच्चारण मात्र से भक्त शिष्य के हृदय सागर में उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं। वह अनुभव करता है कि परब्रह्म परमात्मा ही मेरे गुरुदेव के रूप में प्रकट हुए हैं। गुरु सदैव शिष्यों का कल्याण चाहते हैं, तभी तो गुरुदेव को कल्याण स्वरूप शंकर जी का अवतार कहा जाता है। भगवान शंकर जब कभी अवतार लेते हैं, तो गुरु के रूप में ही प्रकट होते हैं। श्री गुरुदेव के

हृदय में शिष्य की दीन दशा देखकर करुणा उमड़ पड़ती है। वे शिष्य का अहंकार समाप्त कर उसे भवसागर से पार कर देते हैं। आदि शंकराचार्य के 'गुर्वष्ट्कम' के अनुसार सुन्दर शरीर व परिवार, महान यश और मेरू पर्वत के समान बहुत धन मिल जाए, किन्तु गुरु के चरण कमलों में मन नहीं लगा, तो जीवन में भला क्या किया–

’kjhj: l|: i: ;Fkk ok dy=: ;’k’pk: fp=: /ku: e: : r|Y;eA
x|kjMf/kikn: eu’p:r· yXu: rr% fd: rr% fd: rr% fdeAA[1]

सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड के वंशपथ में कवि अपने गुरु रुद्रमणि की प्रशंसा विस्तार से लिखते है। वंशपथ के प्रथम विश्राम में कवि अपने गुरु का गुणगान श्रद्धापूर्वक करते हुए कहते हैं कि गुरु, जो हमारे ज्ञान और प्रयास को ऊपर उठाकर आध्यात्मिक अनुभव के क्षेत्र में ले जाता हैं और अपने स्पष्ट निर्देश, आदर्श जीवन और प्रभाव के द्वारा सहायता पहुँचाता हैं। गुरु ही वे पथप्रदर्शक हैं जो अपने भास्वर ज्ञान–दीप से हमारे तम का नाश करता है; उनकी वह प्रभा हमारे अंदर उनके आत्म प्रकाश की महिमा बनी रहती है। उनका जो मुक्त, आनन्दमय, प्रेममय, सर्वशक्तिमय अमृतस्वरूप है, उसे वह क्रमशः हमारे अंदर खोलकर दिखला देता है। वह अपने दिव्य दृष्टान्त के द्वारा हमारे ऊपर एक आदर्श अंकित कर देता है और हमारी निम्नतर सत्ता को उसके ध्येय का प्रतिरूप बना देता है। वह हमारे अंदर अपने प्रभाव और सत्ता को भरकर हमारी व्यक्तिगत सत्ता को ऐसा बना देता है कि वह विश्वात्मिका और परात्परा सत्ता के साथ तादात्म्य प्राप्त कर सके।

i:p xkM· tkfgj tx ekgh|A t:fg leku ij ckãu ukgh|AA
e:fu ekjhph d|y fo[;krkA r:fg eg| rkr i:cj [;krkAA
; t|o:n ek/;:fnfu lk[kkA eug| cn&f} t&ru| vfHkyk[kkAA

---

1 मानस उन्मेष, दुर्गा चरन मिश्र, प्रथम सं0 2012, पृ0 22

fefFkyk LoLFk of'k"B lekuA eug :i dkfiy HkxokuAA
Jh x# #nre.kh l folkykA Hk;m v?ke yf[k ekfg n;kykAA
rkl d'ik dfy fdfYol /kkbA ikou gl lfjl dfj lkbAA
fof/k gfj gj r x# n;kykA ftUg jPNl v?kexu fclkykAA
vc x# eu lpkr n< ikbA euu [kb ikjfg yb tkbAA
cnk x# x# tkf[krfg lh lhifr le nkmA
ckl djg cãk.M ee vgfufl Hkkj u tkmAA[1]

रूद्रमणि बहुत विद्वान थे किन्तु उनकी स्थिति राजगुरू जैसी नहीं थी। कवि अपने गुरु का गुणगान करके तुलसी, कबीर आदि कवियों की परम्परा का निर्वाह करता है। गुरु–कृपा से ही उसे काव्य–सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई–

ng ;g oj ltu fugkjhA py lnk efr eu vulkjhAA
cnk vkpk tfg dy nokA ijekjk Hkifr in lokAA
ikn ihB vfdr dg /kkbA Hki edV jruu dfj NkbAA
jktx# lKk tfg [;krkA efu xkre ckãeh dy tkrkAA
l;o'k iftr cg /kkbA lkjh pknh tkl cMkbAA
xkb=h nkrk x# lkbA tkl fØ;k N=h in gkbAA
c/k emMu [kMu ifroknhA lkL= Nom ckth jFk lknhAA
okpLifr le f/k[kMk tkl A e?kk c?kk&lfjl idkl AA
xkikyu dj fl[; tfg xkcl x# xkikyA
nb; cj Lokfeu gefg fcljfg ufg j?kikyAA[2]

इस प्रकार रामकथा की रचना की प्रेरणा में गुरुकृपा को कवि ने स्वयं स्वीकार किया है। वह कहते हैं कि गुरुदेव की ही कृपा से मेरे आराध्य (राम)

---

1 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, विश्राम 1, दो0 37, चौ0 1–8, पृ0 8
2 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 38, चौ0 1–8, पृ0 9

कभी विस्मृत नहीं हुए। अपने गुरु रूद्रमणि से कवि ने संस्कृत ग्रन्थों को पढ़ा होगा। गुरु ने उन्हें स्वयं रचना करने के लिए प्रेरित किया होगा। गुरु से प्राप्त ज्ञान का संयम राजा रूद्रप्रताप ने पूरी निष्ठा से किया।

अतः योग्य गुरु के संरक्षण में साधना करना सर्वथा सुरक्षित एवं निरापद है परन्तु सच्चे गुरु के लिए सच्ची खोज होनी चाहिए। गुरु के जीवन में जितनी अधिक पवित्रता होगी, जितनी अधिक दिव्यता होगी, उसके मुखमण्डल पर चित्तशक्ति का जितना अधिक विकास होगा, उसकी करुणा भरी, कृपाभरी दृष्टि में जितनी भी दिव्य आध्यात्मिक ज्योति निकलती रहेगी, उसके शान्त, स्थिर, निर्मल, अहंकारशून्य, सरल, निश्छल, निर्मान, निर्मोह आचरण में उसकी शीतल स्निग्ध वाणी में, जो सहज ही संशय का उच्छेदन करती है, आनन्द और प्रकाश की वर्षा करती है, जितना अधिक प्रभाव होगा, साधक का उतना ही शीघ्र कल्याण होगा।

सच्चा गुरु कभी अपने को अवतार घोषित नहीं करता, न अपने को सर्वशक्तिमान् ही बतलाता है। इस प्रकार के अहंकार का उसमें लेश भी नहीं होता। प्रकाशन और प्रचार की अपेक्षा मौन और एकान्त से उसका विशेष प्रेम होता है। वह यह कहता भी नहीं कि मैं गुरु हूँ। सच्चा गुरु एक बार के दृष्टि–निक्षेपमात्र से, एक बार के स्पर्श से, एक बार के संकल्प से अपने योग्य शिष्य में शक्तिपात कर सकता है। वह मीलों दूर से अपने शिष्य की काया पलट सकता है, क्योंकि परमाणुओं की गति में जो संवेग है, उससे भी अधिक तीव्र संवेग उसके विचारों में, उसके संकल्प में होता है। बड़ा ही भाग्यशाली है वह साधक, जिसे ऐसा गुरु प्राप्त हो गया है। ऐसे योग्य गुरु हैं बहुत ही दुर्लभ। भगवान् की कृपा से ही वे इस धराधाम पर आते हैं।

इस प्रकार प्रतीत होता है कि कवि को इसी उच्च कोटि के गुरु रुद्रमणि

का संरक्षण प्राप्त हुआ जिससे उन्होंने गुरु निष्ठा में उल्लिखित उद्‌गार व्यक्त किए।

(ख) नाम साधना

ईश्वर एक हैं, किन्तु उनके नाम अनेक हैं। नाम उनका विग्रह है। अतः उनके नाम जप की महिमा का गान धर्मग्रन्थों में किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास श्रीराम के अनन्य उपासक थे, उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में नाम जप को प्राथमिकता दी है।

संसार में 'राम' नाम से बढ़कर कुछ नहीं है। सब कुछ शक्ति इसमें भरी हुई हैं इसलिए सन्तों ने कहा है–

^^jkenk l lfej.k djk fj/k fl/k ;kd ek;**A

ऋद्धि–सिद्धि सब इसके भीतर भरी हुई है। विश्वास न हो तो रात–दिन जप करके देखों। सब काम हो जायेगा, कोई काम बाकी नहीं रहेगा।

यह 'राम' नाम वेदों के प्राण के समान है, शास्त्रों का और वर्णमाला का भी प्राण है। प्रणव को वेदों का प्राण माना गया है। प्रणव तीन मात्रा वाला 'ऊँ' कार पहले–ही–पहले प्रकट हुआ, उससे त्रिपदा गायत्री बनी और उससे वेदत्रय बना। ऋक्, साम, यजुः– ये तीनों मुख्य वेद हैं। इन तीनों का प्राकट्य गायत्री से, गायत्री का प्राकट्य तीन मात्रा वाले 'ऊँ' कार से और यह 'ऊँ' कार–प्रणव सबसे पहले हुआ। इस प्रकार यह 'ऊँ' कार (प्रणव) वेदों का प्राण है।

यहाँ पर 'राम' नाम को वेदों का प्राण कहने में तात्पर्य है कि 'राम' नाम से 'प्रणव' होता है। प्रणव में से 'र' निकाल दें तो 'पणव' हो जायेगा और 'पणव' का अर्थ ढोल हो जायेगा। ऐसे ही 'ऊँ' में से 'म' निकालकर उच्चारण करें तो वह

शोक का वाचक हो जायेगा। प्रणव में 'र' और 'ऊँ' में 'म' कहना आवश्यक है। इसलिए यह 'राम' नाम वेदों का प्राण भी है।[1]

रामखण्ड रामायण में 'श्रीराम' सम्बोधन है अपने प्रभु को स्मरण करने का, उनको बुलाने के भाव का–श्रीराम कहने मात्र से प्रभु समझ लेते हैं कि भक्त हमें पुकार रहा है–

t; Hkt fg jkefg R;kfx dkefg ukeek=fg l;oghA
fnx cju tfg eu ykx rg iHk /kke mRre noghAA
jke dg tk eu tcj r vkl gh Qy ikoghA
,d uke ifr cg lgluke lil; efuxu xkoghAA[2]

'श्रीराम' बुद्धि से परे, वाणी से अवर्णनीय हैं, अनिर्वचनीय है। अतः उनका स्वरूप उन्हीं की कृपा से भजनीय, सेवनीय तथा चिन्तनीय है। तुलसी ने राम नाम की महिमा बताते हुए कहा है–

^^dgm dgk yfx uke cMkbA jke u ldfg uke xu xkb**AA

मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने नौ दोहों में राम नाम का महत्व प्रतिपादित किया है। उन्होंने मंगलाचरण में उन्हीं देवी देवताओं की वन्दना की, जिन्होनें राम नाम का आश्रय लिया है। इन देवी–देवताओं की संख्या भी नौ ही है। नौ अंक ब्रह्म का सूचक है। नौ सबसे बड़ी संख्या मानी जाती है। राम का नाम जड़ नहीं, चेतन है, सर्वशक्ति सम्पन्न है। नाम सर्वसिद्धिदायक है। राम नाम महामंत्र है।

^^e= egkefu fo"k; O;ky dA eVr dfBu dvd Hkky d**AA

गोस्वामी तुलसीदास की तरह ही कवि रूद्र प्रताप सिंह भी राम नाम का

---

1 मानस में नाम वन्दना, स्वामी रामसुख दास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 7
2 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, छंद 19, पृ0 36

बखान करते हुए कहते हैं कि –

;g fclke ljke d uke ilil c[kkfuA
tkd euu tiu fd; lnk gk; dfy gkfuAA[1]

'राम' नाम उच्चारण करने की बड़ी भारी महिमा है। नाम की वंदना करते हुए गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं–

cnm uke jke j?kcj dkA gr d'lku Hkku fgedj dkAA[2]

अर्थात् मैं रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीरघुनाथ जी के उस 'राम' नाम की वन्दना करता हूँ, जो कृसानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु अर्थात् बीज है। बीज में क्या होता है? बीज में सब गुण होते हैं। वृक्ष के फल में जो रस होता है, वह सब रस बीज में ही होता है। बीज से ही सारे वृक्ष को तथा फलों को रस मिलता है। अग्निवंश में परशुरामजी, सूर्यवंश में रामजी और चंद्रवंश में बलरामजी–इस प्रकार तीनों वंशों में ही भगवान् ने अवतार लिए। ये तीनों अवतार 'राम' नाम वाले हैं, पर श्रीरघुनाथ जी का जो 'राम' नाम है, वह इन सबका कारण है। मैं रघुनाथ जी के उसी 'राम' नाम की वन्दना करता हूँ जो अग्नि का बीज 'र', सूर्य का बीज 'आ' और चन्द्रमा का बीज 'म' है। 'राम' नाम में 'र', 'आ' और 'म' –ये तीन अवयव है। इन अवयवों का वर्णन करने के लिए कृसानु, भानु और हिमकर ये तीन शब्द दिये हैं।

यहाँ ये तीनों शब्द बड़े विचित्र एवं विलक्षण रीति से दिये गये हैं। कृसानु में 'ऋ', भानु में 'आ' और हिमकर में 'म' है। 'कृसानु' शब्द में से 'ऋ' को निकाल दें तो 'क्सानु' शब्द बचेगा, जिसका कोई अर्थ नहीं होगा। 'भानु' शब्द में 'आ' निकाल दें तो भ्नु' का भी कोई अर्थ नहीं होगा। ऐसे ही 'हिमकर' शब्द में से

1 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 103, पृ0 36
2 रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो0 19, चौ0 1

'म' को निकाल दें तो 'हिकर' का भी कोई अर्थ नहीं निकलेगा; अर्थात् कृसानु, भानु और हिमकर– ये तीनों मुर्दे की तरह हो जायेंगे, क्योंकि इनमें से 'राम' ही निकल गया। इनके साथ 'राम' नाम रहने से कृसानु में 'कृ' का अर्थ करना, 'सानु' का अर्थ शिखर है, ऐसे ही 'भानु' में 'भा' नाम प्रकाश का है, 'नु' नाम निश्चय का है और 'हिमकर' में 'हिम' नाम बर्फ का है और 'कर' नाम हाथ का है।[1]

इन तीनों का हेतु 'राम' का नाम ही है। इस प्रकार सब अक्षरों में 'राम' नाम प्राण है। कृसानु, भानु और हिमकर– इन तीनों में से 'राम' नाम निकाल देने पर वे कुछ काम के नहीं रहते हैं, उनमें कुछ भी तथ्य नहीं रहता। यहाँ नाम के तीनों अवयवों को बताने का तात्पर्य है कि 'राम' नाम जपने से साधक के पापों का नाश होता है, अज्ञान का नाश होता है और अंधकार दूर होकर प्रकाश हो जाता है। अशान्ति, सन्ताप, जलन आदि मिटकर शान्ति की प्राप्ति हो जाती है।

साधना के क्षेत्र में राम के सहस्रनामों की उपासना का विधान बताया गया है। राम के सहस्रनामों के जप से भक्त साधक को इस लोक में सुख की प्राप्ति तथा मृत्यु के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। कवि रूद्र प्रताप ने अपने इस महाकाव्य के वंश पथ में राम के सहस्र नामों एवं उसके जप का विस्तार से वर्णन किया है–

ldy iki d: ukl fgr uke lgl: fclkyA
ek{kkfnd vFkkfn if< ckNk yfg rrdkyAA[2]

कवि के अनुसार राम के सहस्र नामों के जप से सारे पापों का नाश होता है। सभी प्रकार की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं और अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

1 मानस में नाम वन्दना, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ0 5–6
2 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 169, पृ0 66

ikofg ldy eudkeuk l i<fg uke lgl/kkA
v?kiqt rk dj ?kkj xt gfj lfjl gfj&vLro c/kkA
fu%Øk/k fcu ekRl;l ifu fcu ykHk lHkklrefr tkrkA
r lfØfr v: vfr iU;oku t i<fg HkfDrlefUorkAA[1]

कवि रूद्रप्रताप किष्किंधाकाण्ड पूर्वार्द्ध में रामनामवर्णन करते हुए कहते हैं–

tk Øelfgr jekjeu jke uke mPpk:A
fy[kb cgkfj fc/kku r nr inkjFk pk:AA[2]

कवि अपने प्रिय आराध्य राम नाम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि राम नाम से बड़ा कोई मंत्र नहीं है–

dg yk dj fi; uke i'klkA lcn lck j?k vorlkA
,fg f} cul Hkt Hktkfeukyk nfj u ukd u rkfg irkyAA
;g lrr lfr d er HkkjkA jkefg Hkft Hko&lfjr fdukjkA
gm fdfe dgm itl cMkbA tfg d Hkt bl in ikbAA
jke uke r e= u ntkA e=kej leLr dfj itkAA
fcLokRek ijekRek LokehA fcLu fcjfp tkl vuxkehAA[3]

'राम' नाम की महिमा का बखान करते हुए कवि रूद्र प्रताप सिंह कहते हैं–

jke&lcn dh efgek tkbA dk Hku ldy fl/kdj dkbAA
g;&Hk; xt&Hk; Hk;jFk xgkA ty&Hk; fxfj&Hk; cu&Hk; egkAA
fexHk; il&Hk; Hk; lxkekA vljirHk;&ukld ukekAA
vL=&lL=&Hk; :t&Hk; ekjA jke lc Toj&uklfugkjAA
c/;k&Hk; gfj lr cj nghA dkjkfxg Hk; gfj gfj yghAA

---

1 रामखण्ड रामायण, वंशपथ,, छंद 30, पृ0 66
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधापथ पूर्वार्ध, दो0 811, पृ0 377
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधापथ पूर्वार्ध, दो0 817, चौ0 3–8, पृ0 379–380

Hk; Mkfdfu lkfdfu vikjkA lc i;kx&Hk; gjr mnkjkAA
gkykgy&Hk; gj j?kdrA fc[ke&dhV&Hk; fcxg lerAA
ldy dHk;&gjrk j?kLokehA foi&lki&Hk;&gj vuxkehAA
nkjk /ku fxgjkt lr jPNfg lnk fØikyA
lfØrg t ckl j cnu jke Hktfg rrdkyAA[1]

'श्रीराम' नाम की महिमा का अमिट प्रभाव है। राम नाम का जापक ही प्रभु को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर की शरण में आकर जीव निर्भय हो जाता है। वह अपना सभी कुछ अपने प्रभु को समर्पित कर देता है और सर्वथा युक्त हो अपने प्रभु के गुणगान में निमग्न हो जाता है। नाम जप में लीन हो जाता है। नाम जप मात्र से उसके सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास में 'एहि महँ रघुपति नाम उदारा' कहकर मानस का प्रारम्भ किया और राम नाम की महिमा से ही इसका समापन भी किया।

कवि रूद्र प्रताप सिंह ने भी राम नाम वर्णन का उपसंहार निम्नलिखित कथन के साथ किया–

:nirki fopkj dfj jkee;h eg ykdA
jkefg tk ymfdd fuj[k rkfg ykd dk lkdAA[2]

भगवान के नाम जप की महिमा प्रायः सभी धर्मों में है। यद्यपि नाम जप का प्रभाव चारों युगों में है, फिर भी कलियुग में तो भवसागर पार करने के लिए राम का नाम ही सुदृढ़ नौका है जो स्मरण करते ही संसार के सब जंजालों को नाश कर देने वाला है। कलियुग में यह राम नाम मनोवांछित फल देने वाला है। राम नाम सहज योग है। ज्ञान, कर्म एवं योग साधना में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, किन्तु राम नाम में विशेष साधन की जरूरत नहीं है। चलते–फिरते, सोते–जागते, उठते–बैठते सभी परिस्थितियों में राम नाम लिया जा

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड, पूर्वार्ध, दो0 818, चौ0 1–8, पृ0 380
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड, पूर्वार्ध, दो0 842 पृ0 391

सकता है। भगवान के तो कई अवतार हैं, भविष्य में भी वे अवतरित होते रहेंगे, किन्तु मृत्यु के समय 'राम नाम सत्य' का ही सामूहिक उद्घोष होता है। जनमानस में राम नाम इतना प्रविष्ट हो गया है कि इसे पृथक करना कठिन है। व्यापारी लोग अनाज तौलाते समय गिनती 'राम ही जी राम' से शुरू करते हैं। ऊँच–नीच, छोटे–बड़े सबके लिए 'जयराम जी' का अभिवादन लोकप्रिय हुआ है। सवर्णों ने राम के नाम को अपने नाम के पहले लगाया है जैसे – राम कुमार, राम नरेश, राम प्रसाद आदि। लेकिन हरिजनों ने राम नाम की उपाधि नाम के अन्त में धारण कर राम नाम का महत्व प्रतिपादित किया है। उदाहरणार्थ जगजीवन राम, कांशीराम आदि को ले सकते हैं।

यही कारण है कि विज्ञान के युग में भी महात्मा गाँधी रामराज्य और राम नाम पर जोर देते थे। लोगों का कहना है कि गाँधी जी ने मरते समय 'हे राम' कहकर प्राण त्यागे।

वस्तुतः राम नाम की महिमा अपरम्पार है। यदि राम के नाम को हम अपने जीवन का मूल मंत्र बना लें तो जीवन की सभी समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो जायेगा।

(ग) योग साधना

योग शब्द सम्बन्धवाचक है। आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध, जीव और शिव के समन्वय का सिद्धान्त ही योग कहलाता है। जीव और ईश्वर में सम्बन्ध में तीन साधन बतलाये गये हैं– कर्म, भक्ति और ज्ञान। इन तीनों योगों का विपुल वर्णन गीता में किया गया है।

गीता अनन्त भावों का अथाह सागर है। इस रत्नाकर में गोता लगाने वाले को किसी न किसी रत्न की अवश्य ही प्राप्ति होती है। यही कारण है कि विभिन्न महात्माओं ने अपनी मनीषा के अनुसार गीता में भिन्न–भिन्न अर्थ का प्रतिपादन

किया है। श्री शंकराचार्य निवृत्तिमार्ग के पक्षपाती थे, अतः उन्होंने गीता में ज्ञान योग का प्रतिपादन किया है। भगवद्भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ साधन मानने वाले श्रीरामानुजाचार्य ने गीता में भक्तियोग का प्रतिपादन किया है। लोकमान्य तिलक प्रभृति विद्वानों ने गीता में कर्मयोग को ही प्रधान बतलाया है। तात्पर्य यह है कि गीता इन तीनों की त्रिवेणी है। इन तीनों योगों का पृथक्–पृथक् वर्णन तो अनेक शास्त्रों में प्राप्त होता है, परन्तु कवि रूद्र प्रताप सिंह ने सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण में इन तीनों योगों का वर्णन बड़ी कुशलता से किया है। रामखण्ड रामायण में कवि ने केवल विभिन्न मार्गों का निदर्शन ही नहीं वरन् सभी के संगम का भी प्रदर्शन किया है। यही इस काव्य की बड़ी विशेषता है।

गीता में योग शब्द सम्बन्धवाचक है। युज् धातु से योग शब्द बनता है। जिसका अर्थ मिलना या सम्बन्ध स्थापित करना है। गीता का यह योग पातंजल योग से भिन्न है। पातंजल योग में योग शब्द समाधिवाचक (युज् समाधौ) है। समाधि चित्तवृत्तियों के निरोध से ही सम्भव है। अतः पातंजल योग में चित्तवृत्ति निरोध को ही योग माना गया है। इस प्रकार गीता का योग पातंजल योग से भिन्न है। गीता में योग समाधि नहीं, वरन् सोपान है; साध्य नहीं, वरन् साधन है; लक्ष्य नहीं, वरन् मार्ग है।[1]

रामखण्ड रामायण में कवि ने इन तीन मार्गों को साधन माना है। तात्पर्य यह है कि इन तीन मार्गों से ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। आत्मा और परमात्मा में मिलन के तीन मार्ग है। जीव और शिव में सम्बन्ध के लिए तीन सोपान हैं।

'गीता' ब्रह्मविद्या है, क्योंकि वह सब उपनिषदों का सार है। ब्रह्म ही परम तत्व है। इस परम तत्व की प्राप्ति के तीन साधन हैं– कर्म, भक्ति, ज्ञान। अतः तीनों को योग कहा गया है। ये तीन ब्रह्म–तत्त्व के अभिन्न अंग है–

---

1 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, पृ0 80

ekxL=;k e;k ikDrk u'kk J;k fof/kRl;kA
Kku de p HkfDr'p ukik·U;k·fLr dfgfpr AA[1]

एक ही तत्व के तीन खण्ड होने के कारण प्रकृत रूप से उनका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की स्थिति नहीं है। तीनों का फल समान है– ब्रह्म प्राप्ति या ईश्वर से मिलन।

(1) कर्मसाधना

भगवान ने गीता में बतलाया है कि सभी वर्णों के कर्म निश्चित हैं। ये निश्चित कर्म ही उनके स्वकर्म कहे जाते हैं। ये स्वकर्म ही कर्मयोगी के लिए स्वधर्म है। स्वकर्म का आचरण ही मनुष्य का पुनीत कर्तव्य है। स्वकर्म के सहज या स्वाभाविक कर्म भी कहते हैं। मनुष्य के न चाहने पर भी उसे स्वकर्म करना पड़ता है। उसकी प्रकृति उसके निश्चित कर्म को करने के लिए बाध्य करती है। वह स्वभावजन्य कर्म से बँधा हुआ पराधीन व्यक्ति है। वह संकल्पों के अनुसार कर्म करने में स्वतंत्र नहीं है। अतः कर्मयोगी के लिए स्वकर्म ही स्वधर्म का आचरण है।

भगवान कृष्ण ने कहा है यह कर्मयोग का रहस्य बड़ा कठिन है। हम कर्म किये बिना नहीं रह सकते। साधारणतः मनुष्य आसक्ति के कारण ही कोई कर्म करता है। आसक्ति कर्म के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। हम सुख–प्राप्ति तथा दुःख परिहार के लिए ही कर्म करते हैं। अतः आसक्ति ही कर्म का मूल है। कर्मयोगी को इस आसक्ति पर विजय प्राप्त करनी चाहिए और अनासक्त होकर कर्म का आचरण करना चाहिए। कर्मयोगी को सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, रूप द्वन्द्व से ऊपर उठकर कर्म करना चाहिए। साधारण मनुष्य के लिए यह सम्भव नहीं। साधारण मनुष्य सर्वदा लाभ के लिए कोई कर्म करता है।

---

1 भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैंरोला, पृ0 58

कर्मयोगी लाभ–हानि की भावना से प्रेरित नहीं होता। अतः उसका कर्म अनासक्त कर्म है। भगवान ने इसी कर्मयोग का उपदेश देते हुए अर्जुन को बतलाया है कि वह जय–पराजय, लाभ–हानि और सुख–दुख को समान समझकर, उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जा। इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।[1]

कर्मयोगी के लिए स्वकर्म ही स्वधर्म है। सभी वर्णों के कर्म निश्चित हैं ये निश्चित कर्म ही उनके स्वकर्म कहे जाते हैं। ये स्वकर्म ही उनके स्वधर्म हैं। स्वकर्म का आचरण ही मनुष्य का पुनीत कर्त्तव्य है। मनुष्य के न चाहने पर भी उसे स्वकर्म करना पड़ता है। उसकी प्रकृति उसके निश्चित कर्म को करने के लिए बाध्य करती है। वह स्वभावजन्य कर्म से बँधा हुआ पराधीन व्यक्ति हैं वह संकल्पों के अनुसार कर्म करने में स्वतंत्र नहीं है। अतः कर्मयोगी के लिए स्वकर्म ही स्वधर्म का आचरण है।

गीता में कर्मयोग का तात्पर्य निष्काम–कर्म से ही है। इसका उपदेश करते हुए भगवान अर्जुन से कहते हैं–

deZ.;sokf/kdkjLrs ek Qys"kq dnkpuA
ek deZQygsrqHkwekZ rs l³ks·LRodeZf.kAA[2]

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। अर्जुन को निमित्त बनाकर भगवान संसार को उपदेश दे रहे हैं कि मानव कर्म करने में ही स्वतंत्र है। फल भोगने में नहीं, क्योंकि मनुष्य के कौन–कौन से कर्म

1 सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।। गीता अध्याय 2, श्लोक 38,

2 गीता, अध्याय–2, श्लोक 47

के क्या–क्या फल हैं और फल उसे किस जन्म में किस प्रकार प्राप्त होंगे, इसका ज्ञान मनुष्य को नहीं। अतः फल का विधान करना विधाता के अधीन है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में विभिन्न चरित्रों के माध्यम से गीता के निष्काम कर्मयोग की व्याख्या की है। एक निष्काम कर्मयोगी का चरित्र कैसा होना चाहिए। इसे स्पष्ट करने हेतु तुलसीदास ने हनुमान और भारत जैसे चरित्रों की रचना की। मानस की निम्नांकित पंक्तियों में गीता के कर्म–फल सिद्धान्त के अनुरूप कर्म की प्रधानता का संकेत निहित है–

del i/kku fo'o dfj jk[kkA
tk t l dfjv lk rl Qy pk[kkAA

मानस के सभी चरित्र निष्काम कर्म करने वाले कर्मयोगी हैं– चाहे वे पक्षी, वानर, मनुष्य आदि कुछ भी हों। वे निष्काम भाव से राम की सेवा करते हैं किन्तु सेवा के बदले उनसे कुछ नहीं लेते।

कवि रामचरित मानस से प्रभावित हुआ है। क्योंकि जो दृष्टिकोण मानस में है, वही रामखण्ड रामायण में भी प्राप्त होता है।

रामखण्ड रामायण में हनुमान का चरित्र निष्काम कर्मयोगी का श्रेष्ठ उदाहरण हैं। राम की सेवा के लिए हनुमान अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। वे भगवान राम के कई महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करते हैं।

सीता की खोज करना–

jke dkt l d, gr dfi mPpfl[kj vojkfgA
fpru fdgm egr Hkfj feyu gr cbnfgAA[1]

संजीवनी औषधि लाना–

1 रामखण्ड रामायण, सुन्दरकाण्ड, दो0 47, पृ0 23

l/kkuh ;g tkfu, dg l[ku le>kbA
cgfj vitukr dfi fxfj rgok /kfj vkbAA[1]

fxfj rgfg /kfj dfi vkb lknj jke pe ftvk,ÅA
dfijkt&fdjfr vikj y?k dfg dg fof/k y?k xk,ÅA
guekule ufg vku ckuj vej ufg j?kcj ijA
tkb tkb ,fg eg pgb lkb f=ykd dk dkjt ijAA[2]

लंकादहन करना–

ngngkr nfgi j QyokjhA cjfg :[k Hk[kfunkrkjhAA
jke dkt ikod fl;jkuhA l[kpfj ngr vlj jt/kkuhAA[3]

इन कार्यों के बदले में हनुमान राम से कुछ भी नहीं चाहते। मानस में राम स्वयं इस तथ्य को स्वीकारते हुए कहते हैं–

lu dfi rkfg leku midkjhA ufg dkm ljuj efu ru/kkjhAA

ifr midkj djk dk rkjkA lue[k gkb u ldr eu ekjkAA

lu lr rkfg mfju e ukghA n[km dfj fcpkj eu ekghAA[4]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि रामखण्ड रामायण में हनुमान अपनी निष्काम साधना द्वारा भगवान राम को जीतकर अपना मनमेघ सफल करते हैं। भरत, लक्ष्मण, अंगद, निषाद आदि के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। भरत ने जिस प्रकार राम की अनुपस्थिति में 14 वर्षों तक राम की ओर से

---

1 रामखण्ड रामायण, लंकाकाण्ड, दो0 254, पृ0 124
2 रामखण्ड रामायण, लंकाकाण्ड, छंद 66, पृ0 124
3 रामखण्ड रामायण, सुन्दरकाण्ड, दो0 436, चौ0 1–2, पृ0 223
4 रामरचित मानस, सुन्दरकाण्ड, दो0 32, चौ0 5–7

अयोध्या का राजकाज चलाया। अयोध्यावासियों की सेवा की, राजमहल की समस्त सुख–सुविधाओं का परित्याग किया पर बदले में कुछ नहीं चाहा। उसी प्रकार हमें भी मानव मात्र की निष्काम सेवा करते हुए कुछ पाने की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। इस क्षेत्र में हमारी सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि जिस तरह भरत के सुशासन में अयोध्यावासी भगवान् राम को भूल गये उसी प्रकार हमारी अनवरत् निष्काम कर्म साधना से जगतवासी दुःख में भगवान को याद करना भूल जावे। यही रामखण्ड रामायण का संदेश है।

भगवान राम का जीवन स्वयं अपने आप में श्रेष्ठतम् कर्मयोगी का जीवन है किन्तु हमने उनके चरित्र से भी यह प्रेरणा ग्रहण नहीं की। अतः निष्काम भाव से परहित में निरत होना चाहिए। इस दृष्टि से यदि ऐतिहासिक युग पर नजर डाली जाए तो भारत में महात्मा गाँधी से बड़ा भगवान राम का साधक कोई नहीं हुआ। महात्मा गाँधी का हृदय राम का सर्वोत्तम मन्दिर था– ''रघुपति राघव राजाराम'' का नित्य कीर्तन करने वाले इस महामानव ने भगवान राम की तरह अछूतों को गले लगाया। भरत की तरह मानव सेवा को ही उन्होंने राम की पूजा समझा। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी वे राम को नहीं भूले। 'हे राम' कहकर उन्होंने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। स्पष्ट है कि गाँधी जी का जीवन सर्वश्रेष्ठ निष्काम कर्मसाधक का जीवन था।

भगवान कृष्ण ने गीता में निष्काम कर्मयोग की जो व्याख्या की है वह परहित या मानव सेवा का सर्वोत्कृष्ट रूप है। रामखण्ड रामायण में भरत, हनुमान, लक्ष्मण, केवट, निषाद, शबरी यहाँ तक कि जटायु भी सच्चे कर्म साधक के रूप में चित्रित किये गये हैं।

निष्कर्षस्वरूप में हम कह सकते हैं कि रामखण्ड रामायण निष्काम कर्म साधना का पर्याय है। रामखण्ड रामायण में जो सबसे बड़ा नैतिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है, वह है निष्काम कर्मयोग की पर्याय रामभक्ति का। यह सार्वभौमिक

नैतिक आदर्श है। इसके आधार पर भारत के श्रेष्ठतम जीवनादर्श ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' को अमलीजामा पहनाया जा सकता है।

¼ii½ *ज्ञान साधना*

ज्ञान साधना ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने का आध्यात्मिक मार्ग है। ज्ञान मार्ग के द्वारा भी जीव और शिव का, आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध हो सकता है। यह सम्बन्ध परमात्मा से तादात्म्य है। ज्ञान साधक आत्मरूप को परमात्मा का स्वरूप समझता है, वह परमात्मा से भिन्न नहीं वरन् अभिन्न है। यही तादात्म्य भाव है। ज्ञान साधक के लिए सृष्टि ईश्वरमय है, ईश्वर ही है। सृष्टि और स्रष्टा में कोई भेद नहीं। जगत परमात्मा का ही स्वरूप है। परमात्मा से भिन्न किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं। भेद मिथ्यादृष्टि है, अभेद यथार्थ दृष्टि है। भेद देखने वाला अज्ञानी है और अभेद देखने वाला ही ज्ञानी है।

रामखण्ड रामायण में कवि ज्ञान साधना का निरूपण करते हुए कहता है कि अपने सभी कार्यों, इच्छाओं और अपने आपको परमात्मा में मिला देना ही ज्ञान साधना है। संसार को असार तथा आत्मा को परमात्मा स्वरूप समझना ही ज्ञान साधना का स्वरूप है। ज्ञानी के लिए जो कुछ भी दृश्य है वह माया है, मृगतृष्णा है, स्वप्न की सृष्टि है। यथार्थ में सच्चिदानन्द ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं, जो कुछ है वह ब्रह्म ही है। ब्रह्म एक है, शुद्ध ज्ञान स्वरूप है।

रामखण्ड रामायण के अटवीपथ में अगस्त्य ऋषि गोदावरी नदी के तट पर ज्ञान, दर्शन आदि का निरूपण करते हैं। इन संदर्भों को कवि रूद्रप्रताप वाल्मीकि से ग्रहण नहीं करते बल्कि इसकी प्रेरणा उन्हें तुलसीदास से प्राप्त हुई है। मानस में यह संदर्भ इस प्रकार हैं–

rc j?kcj dgk efu ikghA rEg lu iHk njko dN ukghAA

rEg tkug tfg dkju vk;mA rkr rkr u dfg le>k;mAA

vc lk e= ng iHk ekfgA iNg ukFk ekfg dk tkuhAA
efu e ldku lfu iHk ckuhA iNg ukFk ekfg dk tkuhAA
rEgjb Hktu iHkko v?kkjhA tkum efgek dNd rEgkjhAA

Åefj r: fclky ro ek;kA Qy cãk.M vud fudk;kAA
tho pjkpj tr lekukA Hkhrj clfg u tkufg vkukAA[1]

कवि रूद्रप्रताप सिंह तुलसीदास की इसी प्रेरणा से ज्ञान साधना के लिए प्रवृत्त होते हैं–

rkel lPNe tkfu rUek=k HkU;k l ruA
: i x/k j l ekfu lCn Lil lnk HkuhAA

lNe ekf=dk ,fg voLFky Øeuk HkuhA
cy ij jrk nfg lkfur rr lvfLFk RodAA[2]

कवि कहते हैं कि हमें योगियों की तरह अन्तःकरण साफ रखना चाहिए, तभी वह मोक्ष प्राप्ति की इच्छा का अधिकारी है। मोक्ष का ज्ञान लक्ष्मण श्रीराम से पूछते हैं; इसी ज्ञान–साधना की चर्चा में राम के मुख से मोक्ष–प्राप्ति के जो मार्ग बताये गये है उनमें गहरा दर्शन है। माया एक आवरण है। इसका भ्रम कैसे मिटे, इसके लिए माण्डा नरेश रुद्र प्रताप सद्ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त करने की स्थिति का ज्ञान कराता है–

}/khHkr ir dy ek;kA vkojuu fcPNi lkgk;kAA
vkojuu eMy Hko djkA ,fg idkj lnxUFkUg gjkAA
fyxkRek ijekRek rjA LFky l{e Hknkfn fcgjAA
vij X;ku Hkkfrd Hko vklkA fr"Bfr :"V rjfgr fujklkAA

---

1 रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड, दो0 13, चौ0 1–7
2 रामखण्ड रामायण, अटवीपथ, सो0 34–35, पृ0 31

lklkfjd l:lkjh nokA ukx u ftfe eDrk xu lokAA
ek;k vojfur l:lkjkA cã u mjfcp ijr fugkjkAA
dkp Hkfe yf[k ftfe vX;kuA ty Hke Hkfer gkfg fcu
tkuAA
cLr mjLFk ijfLFkr X;kukA lhfEu u ftfe fut en
ifgpkukAA[1]

कवि ज्ञान से समन्वित दर्शन अपने स्तर पर अभिव्यक्त नहीं करता बल्कि सम्पूर्ण दर्शन श्रीराम के मुख से उद्भूत होता है। कदाचित्, रूद्रप्रताप अपने ज्ञान को और अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए ऐसा करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि यह जो दृश्यमान चराचर जगत है वह सब कुछ ब्रह्म ही है; उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। यह जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह मायामय है, क्षणिक है, नाशवान् है। उसमें मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को लगाना व्यर्थ है–

ek;ke; uLoj lc tkxhA tk prjkuu dkfV HkokuhAA
prjkuu fØr feF;k lkbA cãm dky ik; N; gkbAA
chtd cht Nht yg dkykA fdfe ckjh r: rkl
fclkykAA
ek;k&m)o cLr ftr frr fcyh;rk ikbA
tk ek;k r ij fi:; lkb lfFkjrk xkbAA[2]

यदि मन, बुद्धि, इन्द्रियों का कुछ उपयोग है तो ये ब्रह्म में ही लगातार सार्थक है। यह जो प्रतीयमान है वह सब ब्रह्म है और वह ब्रह्म 'मैं' हूँ। इसलिए सब मेरा ही है, इस प्रकार आत्मा को अधिष्ठाता मानना। यह जो दृश्यमान है सब मायामय है, नाशवान् है–

---

1 रामखण्ड रामायण, अटवीपथ, दो0 41, चौ0 1–8, पृ0 38
2 रामखण्ड रामायण, राजपथ, दो0 683, चौ0 6–8, पृ0 341

lR; ,d feF;k lalkjA ,db njlq vuad iadkjAA
Hkkuq ,d vxfur ?kV Nk;kA ?kV tmq lc mikf/k gb ek;kAA
ek;k uLoj tkr fcykbA fe= vuad ,d= n[kkbAA[1]

इसका अत्यन्ताभाव ही आत्मा, जो भावमय है और मुझमें निवास करता है।

निष्कर्षस्वरूप हम कह सकते हैं कि मनुष्य के लिए आत्मा ओर परमात्मा का अभेदरूप ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, जो जन्म–मरणादि समस्त सांसारिक क्लेशों से निकालकर कैवल्यमुक्ति (मोक्ष, निर्वाण, सेलवेशन–Salvation या नजात) की अवस्थाओं में ले जाता है–

X;kuh d: dboY; fopkjkA
HkkfrUg dgq jfc l>q gtkjkAA[2]

अन्य सांसारिक ज्ञानों से मनुष्य का परम कल्याण सम्भव नहीं है। इस पथ के जिज्ञासुओं को बिन्दु–ध्यान और नाद–ध्यान की वह सच्ची क्रिया सीखनी चाहिए जो आत्मा–परमात्मा के साक्षात्कार के लिए आवश्यक है। ये दोनों ही सूक्ष्म ध्यान हैं। इसके पहले स्थूल उपासना भी अनिवार्य है, जिसके सहारे साधक सूक्ष्म ध्यान की योग्यता प्राप्त करता है। स्थूल उपासना के अन्तर्गत दो प्रधान बाते हैं– नाम–जप और रूप–ध्यान। मंत्र–जप या नाम जप साधना का पहला चरण है। इसके बाद नाम से सम्बन्धित रूप का मानस–ध्यान अर्थात् परमात्मा के किसी एक सगुण रूप को मानस पटल पर उतारना। इस प्रकार नाम–रूप से बने इस संसार में साधक अनेक नाम–रूपों को धीरे–धीरे छोड़ते हुए एक नाम–रूप में संलग्न हो जाता है। यह एकाग्रता या सिमटाव उसे इस योग्य बना देता है कि अब वह बिन्दु ध्यान करने में समर्थ होता है। इस ध्यान के द्वारा अन्तर्ज्योति का दर्शन होता है और फिर आन्तरिक नाद (शब्द, ओंकार ध्वनि)

---

1 रामाखण्ड रामायण, राजपथ, दो0 683, चौ0 1–3, पृ0 340–341

2 रामखण्ड रामायण, राजपथ, दो0 683, चौ0 4, पृ0 341

ग्रहण होता है। वही नाद परमात्मा से मिलाता है। ऐसा भाग्यवान साधक परमात्मा को अनुभव से जान लेता है, यही आत्मज्ञान है–

>Bb txrh pfjr gb >Bm fpr fdfe NkiA
lkpk vkre X;ku gbi le>fl :n irkiAA[1]

इस आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु सतत् साधना करनी चाहिए तभी पूर्णत्व को प्राप्त किया जा सकता है। अतः अपने समस्त कार्यो, इच्छाओं, और अपने–आपको, अभिमानरहित होकर, उस परमेश्वर में मिला देना ही ज्ञान–साधना है।

(iii) भक्ति साधना

चित्तवृत्ति निरन्तर अविच्छिन्न रूप से अपने इष्टस्वरूप श्रीभगवान् में लगे रहना अथवा भगवान् में परम अनुराग या निष्काम अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। ऋषियों ने बड़ी सुन्दरता के साथ भक्ति की व्याख्या की है। पुराण, महाभारत, रामायणादि, इतिहास और तंत्रशास्त्र भक्ति से भरे हैं। शैव, शाक्त और वैष्णव सम्प्रदाय तो भक्ति–साधना की ही जय–घोषणा करते हैं। वस्तुतः भगवान जैसे भक्ति से वश में होते हैं, वैसे और किसी भी साधन से नहीं होते।

भक्त के उद्धार के लिए भगवान सर्वदा तत्पर रहते हैं। भक्त भगवान के भरोसे रहते हैं। जिस प्रकार माता शिशु की रक्षा करती है उसी प्रकार भगवान भक्त की रक्षा करते हैं।

आराध्य में पराकोटि की अनुरक्ति को भक्ति कहा गया है। नारद भक्ति सूत्र के अनुसार भक्ति आराध्य के प्रति परम प्रेमस्वरूपा होती है।[2] श्रीमद्भागवत् में भक्ति के नौ भेद स्वीकृत किये गये हैं– श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन। मानस में लक्ष्मण के प्रति श्रीराम

---

1 रामखण्ड रामायण, राजपथ, दो0 685, पृ0 342

2 तुलसी की भक्ति : सामाजिक संदर्भ, तुलसीदल, पृ0 118, संस्करण 2002

ने इसका उपदेश किया है जिसका पर्यवसान भगवान का प्रेमपात्र बनने में है। मानस में तुलसी ने राम के द्वारा शबरी के प्रति उपनिष्ट भक्ति भी नौ प्रकार की बताई है जो उपर्युक्त श्रीमद्भागवत के मत से किंचित भिन्न है। इसमें निर्दिष्ट भक्ति–भेद इस प्रकार हैं–संतसंग, कथाप्रसंग में रति, गुरु–पदसेवा, कपट त्यागकर भगवत् गुणगान, दृढ़ विश्वासपूर्वक मंत्र जाप अथवा भजन, इन्द्रिय दमन, बहुत से कर्मों में वैराग्य, निरन्तर सज्जन धर्म में तत्परता, सम्पूर्ण जगत को भगवन्मय देखना एवं भगवान से अधिक संत को मानना, यथालाभ संतोष एवं अदोषदर्शन, सरल और सबसे छलहीन होना, हृदय में भगवान का भरोसा रखना, हर्ष–दीनता से रहित होना।[1]

रामखण्ड रामायण के अटवीपथ में कवि नवधा भक्ति का उल्लेख करते हैं। भगवान राम उसे भक्ति के वे नौ लक्षण बतलाते हैं जिससे वह भगवान की प्रेमपात्र बन जाय और इस प्रकार वह शबरी को आश्वस्त करते हैं कि वह अपने को अधम न समझे, वह उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं–

rfg lNi HkfDr 0;ogkjkA dgm rkfg leuh vf/kdkjkAA
lr lxfr lk/ku gb vknhA nt e xkFkk lHkcknhAA
rh t ee xuxk;d gkbiA lhe[k cpu lk/k pkFkkbiAA
ipe x#lok&jr gkbiA lte fu;e iU; fn< tkbiAA
e eu lkx mik lu&dkjhA llre HkkDR;k/ok cj ukjhAA
Hkkfefu ;g v"Ve 0;ogkjkA tk itfg tu fcfc/k idkjkAA
loHkr e efr tfg ykxkA vij nC; r tkfg fcjkxkAA
tk e rÙo fcpkjfg ik.khA uo/kk HkfDr ekx ;g tkuhAA
,fg Hkkfr uo/kk HkfDr d lfc/kku yPNu xk,ÅA
efDr HkfDr lyH; le.kh HkfDr yPNu tkuÅAA
tc HkfDr tu ltkr rc ee rÙo vuHko ykgghA

1 मानस, अरण्यकाण्ड दो0 34–35

ee rÙo vuHko fl) tfg dg lkb efDrfg ikoghAA[1]

मोक्ष वर्णन के प्रसंग में कवि लिखता है कि भक्ति और मुक्ति के कारण श्री रघुनन्दन ही हैं–

ek itu fu"Bk ek rRijA euu uke ek c) lifjdjAA
,fg fcf/k ekfg Hktfg euykbA HkfDr ilkn ijk cn ikbAA
HkfDr efDr dkju j?kunuA ftfe lkjHk dkju ny pnuAA
ftfe fc/kk dkju lrlxkA dkju ifrckn u Hke&HkxkAA
efDr ijkfu eukt ukjhA rkfg feykm HkfDr ifrgkjhAA[2]

कवि राम–भक्ति का गुणगान करते हुए लिखता है कि उनकी भक्ति–साधना सार्वजनीन है। कोई किसी देश, किसी जाति और किसी मत का हो वह भक्ति कर सकता है, उसके लिए वह उपयोगी और कल्याणवादिनी है। राम को कोई परात्परतत्त्व न भी माने तो भी उनमें शील–सदाचार के इतने उत्कृष्ट गुण हैं कि उनका स्मरण करने से किसी का भी सब प्रकार से कल्याण हो सकता है। भक्ति का सर्वमान्य स्वरूप उन्होंने श्रीमद्भागवत् के आधार पर रखा है। कवि कहते हैं कि जिस प्रकार सार्वजनिक उपयोग में आने वाली वस्तुओं जल और अन्न को विशेष वर्ग के उपयोग में आने वाले मणि–कांचन आदि से सस्ता और सुलभ होना चाहिए उसी प्रकार भक्ति की स्थिति है। राम भी उसी प्रकार जीवन में सबके लिए सुलभ प्रतीत होते हैं, इसीलिए कवि का दृढ़ विश्वास है कि राम के स्मरण से, उनके स्वरूप चिंतन से, उनकी कथा के श्रवण से सभी का कुशल–मंगल और शुभ हो सकता है–

v/ok ljy lHk HkfDr dh uo xjyxho c[kkuÅA
ifr cn fxjk vfLFkjk mRre fxfjrk mj vkuÅA

---

1 रामखण्ड रामायण, अटवीपथ, छंद 108, चौ0 1–8, पृ0 225–226
2 रामखण्ड रामायण, अटवीपथ, दो0 83, चौ0 1–5, पृ0 41

lkbl rÙo :nili rki ekuq[k lCn :fpj c[kkuiÅA
j?kjk t&pju lju Ink eu vku ufgq mj vkuiÅA[1]

राम–तत्त्व ही समस्त सांसारिक समस्याओं का समाधान है। इस क्रम में वह हिरण्यकश्यप एवं भक्त प्रहलाद के कथा प्रसंग में राम की भक्तों पर कृपा का गुणगान करता है। पौराणिक तथ्य तो यह है कि भगवान विष्णु नरसिंह रूप में प्रकट होकर प्रहलाद की रक्षा करते हैं लेकिन कवि यहाँ राम की ही पुकार की बात लिखता है। वैष्णव मतानुसार राम और विष्णु एक दूसरे के पर्याय ही हैं। वह लिखता है–

lqfu; vij dNq dFkk ilxkA c<bl Hkxfr tsfg dfyeyHkkxkA
uke fgjU;dfli [ky tkbZA Hkkrk dudu;u dj gkbZAA[2]

भक्त प्रहलाद प्रभु में आस्था रखते हैं और प्रहलाद को सारा जगत जानता है। कवि लिखता है कि–

rkl ru; Hkkxor i/kkukA Hk;s iYgkn txr tsfg tkukAA
gfj lqfeju dj lk fnujkrhA jVr fujrj xquxqu ikrhAA
jke jke jkefr iqdkjhA lqnj ikr fl/kq llkjhAA

jkeHktu ifr ckj d: lk uoikr lgkbA
fcuq le Hkkockfjf/k dfBu uj pf< ikjfgq tkbAA[3]

कवि अपने अनन्य इष्ट राम के अतिरिक्त अन्य किसी भी देव को स्वीकारने की आवश्यकता नहीं समझता। वह कहता है कि वह (रूद्रप्रताप) भक्त

---

1 रामखण्ड रामायण, राजपथ, छंद 65, पृ0 80
2 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, सोरठा 99, चौ0 7–8, पृ0 34
3 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 100 चौ0 7–9, पृ0 35

है और भगवान राम उसके आराध्य हैं। वह सेवक है और उसके रघुराई साहेब है–

lod ge lkgc j?kjkbA ;g fopkfj dfj pg tg tkbA
rk r; ldy ekne; dkjh cnk meklfgr f=ijkjhAA
tkb gfj pfjr 0;Dr ;g dhUgkA ekn ldy eÙ;u dg nhUgkAA[1]

कवि इस भक्ति–प्रदर्शन में तुलसीदास जी से अत्यंत प्रभावित है। मानस में गोस्वामी जी की भक्ति साधना के अनेक आयाम हैं, किन्तु दास्यभाव से उत्पन्न अपने प्रभु की सर्वाधिक सेवा में ही उनकी भक्ति का पर्यवसान होता है। तुलसी के लिए रामभक्ति का अर्थ है– अपने इष्ट श्रीराम की सर्वतोभावेन निरतिशय सेवा। उनका दृढ़ मत है–

lod lC; Hkko fcu Hko u rfjv mjxkfjA
Hktg jke in idt vl fl)kUr fcpkfjAA[2]

अर्थात् परमात्मा को सेव्य और अपने को उनका सेवक माने बिना कोई भी व्यक्ति भवसागर पार नहीं कर सकता। सेवा में पराश्रय का भाव निहित है, क्योंकि जब तक जीव परब्रह्म प्रभु का पूर्ण आश्रय ग्रहण नहीं करता, तब तक वह उनका सच्चा सेवक हो ही नहीं सकता। दास्यभाव तथा सेवा भक्ति को उन्होंने अत्यंत उत्कृष्ट एवं अभिन्न माना है।

इस प्रकार प्रभु की निष्काम, निरन्तर तथा निरतिशय सेवा को कवि ने अपनी भक्ति–साधना का एक अनिवार्य एवं अभिन्न अंग माना है। भगवद्भक्ति में सेवक–साहेब–भाव के अनेक ज्वलंत उदाहरण उनके काव्य में यत्र–तत्र–सर्वत्र उपलब्ध हैं। अपने इष्टदेव श्रीराम की सेवा को 'परम धरम' मानने वाले कवि

---

1 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 68, चौ0 6–8, पृ0 20
2 रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दो0 119(क)

रूद्रप्रताप ने स्वाभाविक रूप से भरत, लक्ष्मण, निषादराज, जटायु, हनुमान जैसे पात्रों के रूप में सेवाभाव के आदर्श को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया हैं सामाजिक आदर्श प्रस्तुत करने वाले कवि के सेवाभाव तथा परहित को यदि हम आदर्श मानकर प्राणिमात्र की सच्ची, निष्कपट सेवा में जुट जायँ तो आज के संकीर्ण, अर्थपरक, उपयोगितावादी तथा उपभोक्तावादी स्वार्थी समाज की अनेकानेक भीषण समस्याओं का अन्त हो सकता है। चूँकि निःस्वार्थ सेवा ही सामाजिक मंगल–विधान की नींव है। अतएव हमें क्षुद्र व्यष्टि से बाहर निकलकर समष्टि के कल्याणार्थ कर्तव्यपरायणता, मर्यादित संयम तथा समग्र जगत को प्रभु का व्यक्त रूप मानकर भक्तिभाव का उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत करना होगा। 'परहित निरत' होकर ही नर (मानव) नारायणत्व (दैवी उच्चता) के सोपान पर चढ़ सकता है और तभी रामराज्य का उदात्त स्वप्न साकार हो सकता है। संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि कवि रूद्रप्रताप का ''हम सेवक साहेब रघुराई'' भाव आध्यात्मिक तथा सामाजिक दोनों धरातलों पर सर्वथा स्तुत्य एवं अनुकरणीय है तथा यह लोकमंगल की आधारशिला है।